श्री रामायण तत्त्वम्

प्रकाशक—

वैदांत प्रचार मंडल, अजमेर

मूल्य— =)

ॐ

श्री रामायण तत्त्वम्

बालकाण्ड

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥
उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥
यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवा सुराः
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः
यत्पादपल्वमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥

—संत महिमा—

मुद मंगलमय संत समाजू ।
जो जग जंगम तीरथ राजू ॥
मति कीरति गति भूति भलाई ।
जब जेंहि जतन जहाँ जेंहि पाई ॥

सो जानव सतसंग प्रभाऊ ।
लोकहुं वेद न आन उपाऊ ॥
बिन सतसंग विवेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई ।
पारस परस कुधातु सुहाई ॥
बन्दउँ संत असज्जन चरना ।
दुखप्रद उभय बीच कछु वरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं ।
मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥

—रामस्वरूप—

एक अनीह अरूप अनामा ।
अज सच्चिदानन्द परधामा ॥
व्यापक विस्वरूप भगवाना ।
तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ॥
विधिहरिहरमय वेदप्रान सो ।
अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥

—नाममहिमा—

वरनत वरन प्रीति विलगाती ।
ब्रह्म जीव सम सहज संघाती ॥

नाम रूप दुइ ईस उपाधी ।
अकथ अनादि सुसामुझि साधी ।।

को बड़ छोट कहत अपराधू ।
सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू ।।

देखिअहिं रूप नामअधीना ।
रूपज्ञान नहीं नामविहीना ।।

रूप विशेष नाम बिन जानें ।
करतल गति न परहिं पहिचानें ।।

सुमरिअ नाम रूप बिन देखे ।
आवत हृदय सनेह बिसेषे ।।

नाम रूप गति अकथ कहानी ।
समुझत सुखद न परत बखानी ।।

अगुन सगुन विच नाम सुसाखी ।
उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ।।

ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा ।
अकथ अनामय नाम न रूपा ।।

साधक नाम जपहिं लय लाऐं ।
होहिं सिद्ध अनिमादिक पाऐं ।।

राम भगत जग चारि प्रकारा ।
सुकृती चारिउ अनघ उदारा ।।

चहुँ चतुरन कहूँ नाम अधारा ।
ग्यानी प्रभुहिं विसेषि पिआरा ।।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा ।
अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥
एक दारुगत देखिअ एकू ।
पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥
उभय अगम जुग सुगम नाम तें ।
कहेहुँ नाम बड़ ब्रह्म राम तें ॥
व्यापक एक ब्रह्म अविनासी ।
सत चेतनघन आनंदरासी ॥
राम भगत हित नर तनु धारी ।
सहि संकट किये साधु सुखारी ॥

—दुष्टप्रारब्ध—

अति खल जे विषयी बग कागा ।
एहि सर निकट न जाहिं अभागा ॥
आवत एहिं सर अति कठिनाई ।
राम कृपा बिनु आइ न जाई ॥
गृहकारज नाना जंजाला ।
ते अति दुर्गम सैल विसाला ॥
जौं कर कष्ट जाइ पुनि कोई ।
जातहिं नींद जुड़ाई होई ॥
करि न जाइ सरमज्जन पाना ।
फिरि आवइ समेत अभिमाना ॥

३
३७३

जौं वहोरि कोई पूछन आवा ।
सरनिन्दा करि ताहि बुझावा ॥

—सत्संग प्रभाव—

सकल विघ्न व्यापहिं नहीं तेही ।
राम सुकृपाँ विलोकहिं जेही ॥

सोइ सादर सरमज्जन करई ।
महा घोर त्रयताप न जरई ॥

जो नहाइ चह एहि सर भाई ।
सो सतसंग करउ मन लाई ॥

काम कोह मद मोह नसावन ।
विमल विवेक विराग बढ़ावन ॥

सादर मज्जन पान किए तें ।
मिटहिं पाप परिताप हिए तें ॥

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए ।
ते कायर कलिकाल बिगोए ॥

तृषित निरखि रविकर भव भारी ।
फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ।

—रामरहस्य—

एक राम अवधेस कुमारा । तिन्ह कर चरित विदित संसारा ॥
नारिबिरह दुख लहेउ अपारा । भयउ रोषु रन रावनु मारा ॥

ब्रह्म जो व्यापक विरज अज,
अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर,
जाहि न जानत वेद ॥

विष्णु जो सुरहित नरतनु धारी ।
सोउ सर्वज्ञ जथा त्रिपुरारी ॥
खोजइ सो कि अज्ञ इव नारी ।
ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी ॥

झूठेउ सत्य जाहिं बिनु जानें ।
जिमि भुजंग बिन रजु पहचानें ॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई ।
जागें जथा सपन भ्रम जाई ॥

—सगुण स्वरूप—

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा ।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे ।
जल हिम उपल बिगल नहीं जैसे ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतंगा ।
तेहि किम कहिअ बिमोह प्रसंगा ॥

राम सच्चिदानन्द दिनेसा ।
नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहजप्रकासरूप भगवाना ।
नहिं तहँ पुनि विग्यान विहाना ॥
हरष विषाद ग्यान अग्याना ।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना ।
परमानन्द परेस पुराना ॥
विषय करन सुर जीव समेता ।
सकल एकतें एक सचेता ॥

—रामस्वरूप—

सब कर परम प्रकासक जोई ।
राम अनादि अवधपति सोई ॥
जगत प्रकाश्य प्रकासक रामू ।
मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥
जासु सत्यतातें जड माया ।
भास सत्य इव मोह सहाया ॥
रजत सीप महुँ भास जिमि,
जथा भानु कर बारि ।
जदपि मृषा तिहुं काल सोइ,
भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥

—जगन्मिथ्यात्व—

एहि विधि जग हरि आश्रित रहई ।
जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
जौं सपनें सिर काटै कोई ।
बिनु जागें न दूरि दुख होई ॥
जासु कृपा अस भ्रम मिट जाई ।
गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ॥

—रामस्वरूप—

आदि अन्त कोउ जासु न पावा ।
मति अनुमान निगम अस गावा ॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु करम करइ विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिनु वानी वकता बड जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहइ घ्रान बिनु वास असेषा ॥
अस सब भान्ति अलौकिक करनी ।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी ।
रघुबर सब उर अंतरजामी ॥

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी ।
सर्बरहित सबउरपुरवासी ॥

—अवतार वर्णन—

नाथ धरेउ तनु केहि हेतु ।
मोहि समुझाइ कहहु बृषकेतु ॥

जब जब होइ धरम के हानी ।
बाढहिं असुर अधम अभिमानी ॥

करहिं अनीत जाइ नहिं बरनी ।
सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी ॥

तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा ।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

हरि व्यापक सर्वत्र समाना ।
प्रेमतें प्रगट होइं मैं जाना ॥

देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं ।
कहहु सो कहाँ जहाँ है प्रभु नाहीं ॥

व्यापक अकल अनीह अज,
निर्गुन नाम न रूप ।

भगत हेतु नाना विधि,
करत चरित्र अनूप ॥

व्यापक ब्रह्म अलखु अविनासी ।
चिदानंद निरगुन गुनरासी ॥

मन समेत जेहिं जान न बानी ।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥

महिमा निगम नेति कहि कहई ।
जो तिहुं काल एकरस रहई ॥

—:o:—

अयोध्या काण्ड

—जगत्स्वप्नस्वरूप—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता ।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ॥

सपनें होइ भिखारि नृप,
रंक नाकपति होइ ।

जागें लाभ न हानि कछु,
तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥

मोह निसा सब सोवन हारा ।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी ।
परमारथी प्रपंच बियोगी ॥

जानिअ तबहिं जीव जग जागा ।
जब सब विषय विलास विरागा ।।

होइ विवेक मोह भ्रम भागा ।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा ।।

—रामस्वरूप—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।
अविगत अलख अनादि अनूपा ।।

सकलविकाररहित गतभेदा ।
कहि नित नेति निरूपहिं वेदा ।।

बालमीक उवाच

राम सरूप तुम्हार,
वचन अगोचर बुद्धिपर ।

अविगत अकथ अपार,
नेति नेति नित निगम कह ।।

चिदानन्दमय देह तुम्हारी ।
विगतविकार जान अधिकारी ।।

नर तनु धरेहु सन्त सुर काजा ।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा ।।

करम प्रधान बिस्व करि राखा ।
जो जस करइ सो तस फल चाखा ।।

अगुन अलेप अमान एक रस ।
राम सगुन भए भगत प्रेम बस ॥

-व्यावहारिक उपदेश-

धीरज धरम मित्र अरु नारी ।
आपद काल परिखिअहिं चारी ॥

बिनु श्रम नारि परम गति लहई ।
पतिव्रत धरम छाडि छल गहइ ॥

—मायास्वरूप—

मैं अरु मोर तोर तैं माया ।
जेहि बस कीन्हे जीव निकाया ॥

गो गोचर जहँ लगि मन जाई ।
सो सब माया जानेहु भाई ॥

तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ ।
विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥

एक दुष्ट अतिसय दुःखरूपा ।
जा वश जीव पड़ा भव कूपा ॥

एक रचइ जग गुन बस जाकें ।
प्रभुप्रेरित नहिं निज बाल ताकें ॥
ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं ।
देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥

-जीव ईश्वर स्वरूप-

माया ईस न आप कहुँ,
जान कहिअ सो जीव ।
बन्ध मोच्छप्रद सर्वपर,
माया-प्रेरक सीव ॥

धर्मतें बिरति जोगतें ज्ञाना ।
ज्ञान मोच्छप्रद वेद बखाना ॥

-नवधा भक्ति-

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं ।
सावधान सुन धरु मन माहीं ॥

प्रथम भगति संतन कर संगा ।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥
गुरु पद पंकज सेवा,
तीसरि भगति अमान ।

चौथि भगति मम गुन गन,
करइ कपट तजि गान ॥

मन्त्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा ।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।

छठ दम सील बिरति बहु करमा ।
निरत निरंतर सज्जन धरमा ।।

सातवँ सम मोमय जग देखा ।
मोतें संत अधिक कर लेखा ।।

आठवँ जथालाभ सन्तोषा ।
सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ।।

नवम सरल सब सम छल हीना ।
मम भरोस हिय हरष न दीना ।।

गुनातीत स चराचर स्वामी ।
राम उमा सब अंतरजामी ।।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना ।
सत हरि भजन जगत सब सपना ।।
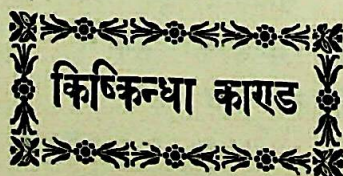
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं ।
मायाकृत परमारथ नाहीं ।।

–व्यवहार-शिक्षा–

मैं बैरी सुग्रीव पिआरा ।
अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ।।

अनुजवधु भगिनी सुतनारी ।
सुन सठ कन्या सम ए चारी ।।

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई ।
ताहि बधें कछु पाप न होई ।।

सुन्दर काण्ड
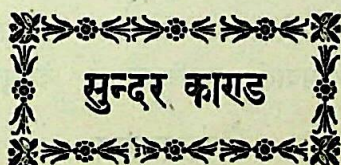
शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं,
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम् ।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं,
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम् ।।

–सत्संग महिमा–

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख,
धरिअ तुला इक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि,
जो सुख लव सत्संग ।।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।।

लंका काण्ड

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं,
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं,
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम् ।।

–विराट्स्वरूप–

विस्वरूप रघुबंसमनि,
करहु वचन बिस्वासु ।
लोक कल्पना बेद कर,
अंग अंग प्रति जासु ।।

पद पाताल सीस अज धामा ।
अपर लोक अंग अंग विश्रामा ।।
भृकुटि बिलास भयंकर काला ।
नयन दिवाकर कच घनमाला ।।
जासु घ्रान आस्विनीकुमारा ।
निसि अरु दिवस निमेष अपारा ।।

श्रवन दिसा दस वेद बखानी ।
मारुत स्वास निगम निज वानी ॥

अधर लोभ जम दसन कराला ।
माया हास बाहु दिग्पाला ॥

आनन अनल अंबुपति जीहा ।
उत्पति पालन प्रलय समीहा ॥

रोम राजि अष्टादस भारा ।
अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥

उदर उदधी अधगो जातना ।
जगमय प्रभु का बहु कल्पना ॥

अहँकार सिव बुद्धि अज,
मन ससि चित्त महान् ।

मनुज वास सचराचर ।
रूप नाम भगवान् ॥

मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू ।
महा मोह निसि सूतत जागू ॥

तुम्ह सम रूप ब्रह्म अविनासी ।
सदा एक रस सहज उदासी ॥

अकल अगुन अज अनघ अनामय ।
अजित अमोघ सक्ति करुनामय ॥

मीन कमठ सूकर नरहरी ।
बामन परसुराम बपु धरी ॥

जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो ।
नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो ।।

उत्तर काण्ड

यः पृथ्वीभरवारणाय दिविजैः सम्प्रार्थितश्चिन्मयः
संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद्ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां ।
कीर्त्तिम्पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ।।

सुनहु तात माया कृत,
गुन अरु दोष अनेक ।
गुन यह उभय न देखिअहिं,
देखिअ सो अबिबेक ।।

–मानवतन महिमा–

बडे भाग मानुष तनु पावा ।
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन गावा ।।
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा ।
पाइ न जेंहि परलोक संवारा ।।
सो परत्र दुख पावइ,
सिर धुनि धुनि पछिताइ ।

कालहि कर्महि ईस्वरहि ।
मिथ्या दोष लगाइ ॥

नर तनु पाइ विषय मन देहीं ।
पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं ॥

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोइ ।
गुंजा ग्रहइ परस मनि खोइ ॥

आकर चार लच्छ चोरासी ।
जोनि भ्रमत यह जीव अविनासी ॥

फिरत सदा मायाकर प्रेरा ।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥

—गुरु महिमा—

करनधार सदगुरु दृढ़ नावा ।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥

जो न तरै भव सागर,
नर समाज अस पाइ ।

सो कृत निदंक मंदमति,
आत्माहन गति जाइ ॥

पुन्य पुञ्ज बिन मिलहिं न सन्ता ।
सतसंगति संसृति कर अंता ॥

बिनु सतसंग न हरि कथा,
तेहि बिन मोह न भाग ।

मोह गए बिनु राम पद
होइ न दृढ़ अनुराग ॥

–रामस्वरूप–

सोइ सच्चिदानंदघन रामा ।
अज विज्ञानरूप बलधामा ॥

व्यापक व्याप्य अखण्ड अनंता ।
अखिल अमोघसक्ति भगवंता ॥

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता ।
सबदरसी अनवद्य अजीता ॥

निर्मम निराकार निरमोहा ।
नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी ॥
ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ।

इहाँ मोह कर कारन नाहीं ।
रबि सन्मुख तम कबहुँ कि जाहीं ॥

जथा अनेक वेषधरि,
नृत्य करइ नट कोइ ।

सोइ सोइ भाव देखावइ,
आपुन होइ न सोइ ॥

नयनदोष जा कहँ जब होई ।
पीत बरन ससि कहँ कह सोइ ॥

जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा ।
सो कह पच्छिम उगउ दिनेसा ॥

नौकारूढ़ चलत जग देखा ।
अचल मोह बस आपुहि लेखा ॥

वालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी ।
कहहिं परस्पर मिथ्यावादी ॥

हरि विषइक अस मोह बिहँगा ।
सपनेहुँ नहिं अग्यान प्रसंगा ॥

निर्गुन रूप सुलभ अति,
सगुन जान नहि कोई ।

सुगम अगम नाना चरित,
सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥

बिनु गुरु होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥
कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥

—ज्ञान महिमा—

बिनु विग्यान कि समता आवइ ।
कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ ॥

लागे करन ब्रह्म उपदेसा ।
अज अद्वैत अगुन हृदयेसा ॥

अकल अनीह अनाम अरूपा ।
अनुभव गम्य अखंड अनूपा ॥

मन गोतीत अमल अबिनासी ।
निर्विकार निरवधि सुखरासी ॥

सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा ।
बारि बीचि इव गावहिं बेदा ॥

-ज्ञानदीपक-

ईश्वर अंस जीव अविनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

सो मायावस भयउ गोसाईं ।
बँध्यो कीर मरकट की नाईं ॥

जड़चेतनहि ग्रन्थि परि गई ।
जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥

तब ते जीव भयउ संसारी ।
छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी ॥

श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई ।
छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥

अस संयोग ईस जब करई ।
तबहुँ कदाचित् सो निरुअरई ॥

सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई ।
जौं हरि कृपा हृदय बस आई ॥

जप तप व्रत जम नियम अपारा ।
जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥

तेइ तृन हरित चरै जब गाई ।
भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ॥

नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा ।
निर्मल मन अहीर निज दासा ॥

परम धरममय पय दुहि भाई ।
अवटै अनल अकाम बनाई ॥

तोष मरुत तब छमां जुड़ावै ।
धृति सम जावनु देइ जमावै ॥

मुदितां मथै बिचार मथानी ।
दम अधार रजु सत्य सुबानि ॥

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता ।
विमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥

जोग अगिनि कर प्रकट,
तव कर्म सुभासुभ लाइ ।

बुद्धि सिरावै ज्ञान घृत,
ममता मल जरि जाइ ॥

तव विग्यानरूपिनी बुद्धि, बिसद घृत पाइ ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दिअटि बनाइ ॥

तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास तें काढ़ि ।
तूल तुरीय संवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि ॥

सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखंडा ।
दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा ।
तब भवमूल भेद भ्रम नासा ॥
प्रवल अविद्या कर परिवारा ।
मोह आदि तम मिटेउ अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उजिआरा ।
उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोइ ।
तव यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया ।
विघ्न अनेक करइ तव माया ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ वहु भाई ।
बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई ॥
ग्यान पंथ कृपान कै धारा ।
परत खगेस होइ नहिं वारा ॥
जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई ।
सो कैवल्य परम पद लहई ॥
मोह सकल व्याधिन कर मूला ।
तिनते पुनि उपजहिं वहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा ।
क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥

प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई ।
उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥
बिमल ज्ञान जल जब सो नहाइ ।
तब रह राम भगति उर छाई ॥

—संतमहिमा—

गिरिजा संत समागम सम,
न लाभ कछु आन ।
विनु हरि कृपा न होइ ।
सो गावहिं बेद पुरान ॥

(इति रामायणतत्त्वम्)

—शारदा प्रतिष्ठान, सी० के० १६/६१ सुड़िया, बुलानाला, वाराणसी—१

या